राष्ट्र को सम्बोधन

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज

[जैन धर्म में एक समर्थ आचार्य को चतुर्विध संघ का सम्यक् मार्ग-दर्शन करना होता है। चतुर्विध संघ से अभिप्राय मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका का है। आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने अपनी ५१ वर्षीय दिगम्बरी साधना में लगभग सम्पूर्ण राष्ट्र का भ्रमण किया है और अपनी प्रेरक वाणी से राष्ट्र को सम्बोधित किया है। आचार्य श्री का लक्ष्य एक आदर्श एवं धर्मप्राण समाज की रचना का रहा है। समाज की हर कमजोरी को उन्होंने इंगित किया है और मानव-कल्याण के लिए दिशा-निर्देश दिया है।

असंख्य जन-सभाओं में समय-समय पर दिये गए महाराज श्री के चिन्तनकण विभिन्न 'उपदेश-सार-संग्रह' ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध हैं। प्रस्तुत लेख में आचार्य श्री द्वारा जयपुर, दिल्ली, कलकत्ता एवं कर्नाटक की जनसभाओं में दिये गये भाषणों के प्रेरक अंश डॉ० वीणा गुप्ता द्वारा समाकलित किए गए हैं।—**सम्पादक**]

☐ मनुष्य भव की सफलता तो उस धर्म आराधन से है जो देवपर्याय में भी नहीं मिलता और जिससे आत्मा का उत्थान होता है। आत्मध्यान द्वारा अनादि परम्परा से चली आई कर्म बेड़ी को तोड़कर मनुष्य सदा के लिए पूर्ण स्वतन्त्र, पूर्णमुक्त हो जाता है।

☐ समय की गति अबाध है। पर्वत से गिरने वाली नदी का प्रवाह जिस तरह फिर लौटकर पर्वत पर नहीं जाता, इसी तरह आयु का बीता हुआ क्षण भी फिर वापिस नहीं आता, वह तो अपनी आयु में से कम हो जाता है। दुर्लभ नर-जन्म पाकर मनुष्य जीवन के अमूल्य क्षणों में से एक भी क्षण व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। आत्म-कल्याण के कार्यों को करते चले जाना चाहिये। जो आज का समय है वह फिर कभी नहीं आयेगा।

☐ जैसे यात्रा करते हुए यात्री को किसी धर्मशाला में विविध देशों से आये हुए यात्री कुछ समय के लिए मिल जाते हैं; उसी तरह इस देह-रूपी धर्मशाला के कारण कुछ यात्री इस जीव को कुछ समय के लिए मिल जाते हैं, जिनमें से यह जीव अज्ञानवश विभिन्न व्यक्तियों को अपने शत्रु, मित्र, पुत्र, भार्या, बहिन आदि मानकर उनसे तरह-तरह की चेष्टायें करता है।

☐ हमारा प्रत्येक पग श्मशान भूमि की ओर ले जा रहा है, प्रत्येक श्वांस में आयु कम हो रही है, मृत्यु निकट आ रही है और प्रतिक्षण शक्ति क्षीण होती जा रही है, फिर भी हम समझते हैं कि हम बढ़ रहे हैं।

☐ आधुनिक जैन जातियां भी प्रायः क्षत्रिय ही हैं किन्तु व्यापार करते रहने से जैन लोग वैश्य बनिये कहलाने लगे हैं; बनिये कहलाते-कहलाते सचमुच उनमें से वीरतापूर्ण क्षात्र तेज लुप्त हो गया है। वे डरपोक बन गये हैं। जब उन पर तथा उनके धर्मायतनों (मंदिरों) पर या उनके परिवार पर आक्रमण होता है तो वे शूरवीरता से उसका उत्तर नहीं देते, प्राणों के मोह में आक्रमणकारी का सामना करने में कतरा जाते हैं। इसके सिवाय जैन धर्मानुयायियों की प्रवृत्ति धन-संचय की ओर इतनी अधिक हो गई है कि वे आत्मा की सम्पत्ति को भूल कर भौतिक सम्पत्ति के मोह में फँस गये हैं। धर्मसाधना उनमें नाममात्र को देखा-देखी या कुलाचार के रूप में रह गई है। जिस धर्म आराधना के कारण जैन जनता ने अपना उत्थान किया, यश, धन, परिवार आदि से उनकी समृद्धि हुई, उसी धर्म-साधना को जैन समाज ने गौण कर दिया और धन की आराधना में अपना मन, वचन, शरीर लगा दिया। यह बहुत बड़ी भूल है। मूल (जड़) को सींचने से ही फल मिलता है। मूल को सुखाकर फल को सींचने से फल नहीं मिला करते। अतः लक्ष्मी, परिवार, यश, आदि की उन्नति के मूल कारण धर्मसेवन में ढिलाई नहीं करनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

☐ कुछ धनिक लोगों ने रात के समय रोटी खाना प्रारम्भ कर दिया है। उनकी देखा-देखी उनके बाल-बच्चे तथा अन्य साधारण व्यक्ति भी अपनी कुल-मर्यादा को तोड़ कर रात्रि-भोजन करने लगे हैं। देहली में आकर मालूम हुआ है कि वहां पर विवाह के समय बारात चढ़ने के बाद रात्रि के समय कन्या पक्ष वर पक्ष को जीमनवार कराता है। यह कितने धार्मिक पतन और दुःख की वार्ता है। दिल्ली के प्रमुख पुरुष अच्छे धार्मिक हैं। यदि वे इस आरम्भ होने वाली कुप्रथा के विरुद्ध आवाज उठावें और थोड़ी-सी भी प्रेरणा करें तथा स्वयं ऐसी रात्रि की जीमनवार न करावें, न ऐसे कार्य में सहयोग दें तो धर्मघातक यह प्रथा शीघ्र ही बन्द हो सकती है।

☐ जनता में जैन साहित्य का इतना प्रसार करना चाहिये कि प्रत्येक विद्वान् तथा धर्मजिज्ञासु के हाथ में जैनधर्म के उपयोगी ग्रन्थ पहुंचें। अन्य लोग अपने पीतल को मुलम्मा करके जनता को अपने धर्म की ओर आकर्षित कर रहे हैं, इधर जैन समाज अपनी सुवर्णप्रभा को भी जनता के सामने रखने में प्रमाद करता है।

☐ भगवान् महावीर ने जहां आत्मकल्याणकारी उपदेश दिया, मुक्तिपथ का प्रदर्शन किया, अज्ञान, अन्ध श्रद्धा को मिटाया, ज्ञान प्रकाश किया, वहीं सामाजिक व्यवस्था की भी सुन्दर प्रणाली बतलाई। अपने भक्तों को चार संघों मे संगठित रहने की विधि का निर्देश किया। मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका के उचित आचार का उपदेश भगवान् महावीर ने अच्छे ढंग से वर्णित किया। उस चतुर्विध संघ की संगठित प्रणाली भगवान् महावीर के पीछे भी चलती रही जिससे जैनधर्म की परम्परा अनेक विघ्न-बाधाओं के आते रहने पर भी बनी रही।

☐ आज चतुर्विध संघ का संगठन शिथिल दिखाई पड़ रहा है, इसी से जैन समाज में निर्बलता प्रवेश करती जा रही है। अतः जैन धर्म को प्रभावशाली बनाने के लिए हमें अपने संघों को मजबूत करना चाहिये। 'संघे शक्तिः कलौ युगे'—इस कलियुग में संगठन द्वारा ही शक्ति पैदा की जा सकती है। इस कारण वीर शासन को व्यापक बनाने के लिए हमारा प्रथम कर्तव्य अपने सामाजिक संगठन को बहुत दृढ़ बनाना है।

☐ गत ८०० वर्ष की परतन्त्रता ने भारतीय विद्वानों के मस्तिष्क को भी परतन्त्र बना दिया है। अतः वे भी विदेशी ईर्ष्यालु इतिहासकारों की कल्पित कल्पना की प्रचण्ड धारा में बह कर भारत के प्राचीन गौरव से अनभिज्ञ बन गये हैं। भारत अब स्वतन्त्र है। अब भारतीय विद्वानों को स्वतन्त्र स्वच्छ मस्तिष्क से भारत के प्राचीन गौरव की खोज भारत के प्राचीन इतिहास ग्रन्थों के आधार से करनी चाहिये।

☐ जो व्यक्ति अच्छे अवसर से लाभ नहीं उठाता वह सचमुच में अभागा होता है। अतः हमको अपने प्रत्येक क्षण की कदर करनी चाहिये। अशुभ कार्य जितनी देर से किया जाए उतना अच्छा है और शुभ कार्य जितनी जल्दी किया जाए उतना अच्छा है।

☐ संसार का प्रत्येक जीव सुख और शान्ति चाहता है। दुःख और अशान्ति कोई भी जन्तु अपने लिये नहीं चाहता। परन्तु संसार में सुख-शान्ति है कहां? प्रत्येक जीव में किसी न किसी तरह का दुःख पाया जाता है। जन्म, मरण, भूख, प्यास, रोग, अपमान, पीड़ा, भय, चिन्ता, द्वेष, घृणा, प्रिय-वियोग, अनिष्ट-संयोग आदि दुःख के कारणों में से अनेक कारण जीव को लगे हुए हैं। इसी कारण प्रत्येक जीव किसी न किसी तरह व्याकुल है और व्याकुलता ही दुःख का मूल है। निराकुलता ही परमसुख है। अनन्त निराकुलता कर्मों के क्षय हो जाने पर प्राप्त होती है। इस मुक्ति के साधन तप, त्याग, संयम, सुख-शान्ति के साधन हैं और क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व-राग, द्वेष, काम, क्षोभ आदि विकृतभाव कर्मबन्ध के कारण हैं, अतः ये ही विकृत भाव दुःख और अशान्ति के साधन हैं।

☐ अपनी मातृभाषा सीखने के साथ द्वितीय भाषा के रूप में भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत का अध्ययन करना भी आवश्यक है। संस्कृत भाषा में साहित्य, न्याय, ज्योतिष, वैद्यक, नीतिसिद्धान्त, आचार आदि अनेक विषयों के अच्छे-अच्छे सुन्दर ग्रन्थ विद्यमान हैं जिनको पढ़ने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान होना अति आवश्यक है। जर्मनी, रूस, जापान आदि विदेशों के विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा पढ़ाई जाती है, तब हमारे विद्यार्थी संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ रहें, ये बड़ी कमी और लज्जा की बात है।

☐ घर की व्यवस्था पुरुष से नहीं हो सकती, बच्चों का पालन-पोषण पति नहीं कर पाता। भोजन बनाकर परिवार को पहले खिलाना, पीछे बचा-खुचा आप खाना, घर आये हुए अतिथि का सत्कार करना, मुनि-ऐलक आदि व्रती त्यागियों के आहार-दान की व्यवस्था करना, घर स्वच्छ रखना, परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के वस्त्रों की स्वच्छता का ख्याल रखना, घर में अशुद्ध खान-पान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न होने देना, कुलाचार—धर्माचार को सुरक्षित रखना—ये सभी अमूल्य कार्य स्त्रियों के हैं। स्त्री चाहे तो घर को स्वर्ग बना दे और यदि वह चाहे तो उसे नरक बना दे। इस प्रकार स्त्री अपने पति की बहुत बड़ी सहायिका शक्ति है। स्त्री के बिना गृहस्थ मनुष्य न धर्म कार्य शान्ति से कर पाता है और न उसके व्यावहारिक कार्य सम्पन्न हो पाते हैं। इस प्रकार पतिव्रता स्त्री घर की साक्षात् लक्ष्मी है।

☐ आज जो ईसाई जाति संख्या में सबसे अधिक दिखाई दे रही है, ईसा का नाम, धाम, काम न जानने वाले लाखों भारत-वासी भी ईसाई बने हुए नजर आ रहे हैं उसका कारण ईसाई समाज का साधर्मी वात्सल्यभाव ही है। वे करोड़ों रुपया खर्च करके अपने सभ्य, कार्यपटु पादरियों द्वारा दीन-हीन जनता की सहायता करके उनको ईसाई मत में दीक्षित करते हैं, फिर अच्छे शिक्षित बनाते हैं, उनके विवाह करा देते हैं।

☐ हजारों जैन परिवार इस महँगाई के युग में अपनी दरिद्रता के कारण अपना निर्वाह बड़ी कठिनाई से कर रहे हैं। बहुत-सी अनाथिन स्त्रियों की जीवन-समस्या विकट बन गई है। हजारों गरीब बच्चे दरिद्रता के कारण पढ़ नहीं पाते। किन्तु हमारे धनी वर्ग में सहायता करने का भाव उत्पन्न ही नहीं होता। उन्होंने यही समझा हुआ है कि यह धन हमारे ही पास रहेगा और हम ही इसका उपयोग करेंगे। परन्तु आज की राजनीति समाजवाद (सोशलिज्म) या साम्यवाद (कम्युनिज्म) की ओर बढ़ रही है। इसके कारण अब धन कुछ थोड़े-से धनी लोगों के पास न रहेगा।

☐ धन-सम्पत्ति की ऐसी अस्थिर दशा में बुद्धिमान पुरुष वही कहलाएगा जो स्वयं अपने हाथों से धन धर्म-कार्यों में, समाज-सेवा में तथा लोककल्याण में खर्च कर जाएगा। आज किसी धनी रईस की सन्तान निकम्मी व निष्क्रिय रहकर ऐशो आराम नहीं कर सकती। आज उन पुराने रईसों, राजाओं, जागीरदारों को भी अपने निर्वाह के लिए परिश्रम करना आवश्यक हो गया है। इसलिए धन-संग्रह अब उतना लाभदायक नहीं रहा जितना कि पहले कभी था। ऐसी दशा में धनिक जैन भाइयों को अपनी सम्पत्ति साधर्मी भाई-बहनों के उद्धार में व्यय करके यश और पुण्य कर्म-संचय तथा समाजसेवा का श्रेय प्राप्त करना चाहिये।

☐ कोई भी मनुष्य समाज से सर्वथा पृथक् रहकर अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। समाज में घुल-मिलकर ही वह अपने जीवन का आनन्द उठा सकता है और दूसरे आस-पास के साथियों को भी उठाने दे सकता है। जब यह निश्चित है कि व्यक्ति समाज से अलग नहीं रह सकता, तब यह भी आवश्यक है कि वह अपने हृदय को उदार बनाए, विशाल बनाए, और जिन लोगों से खुद को काम लेना है, उनके हृदय में अपनी ओर से पूर्ण विश्वास पैदा करे। जब तक मनुष्य अपने पार्श्ववर्ती समाज में अपनेपन का भाव पैदा न करेगा अर्थात् जब तक दूसरे लोग उसको अपना आदमी न समझेंगे और वह भी दूसरों को अपना आदमी न समझेगा, तब तक समाज का कल्याण नहीं हो सकता।

☐ जैन संस्कृति के महान् संस्कारक अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने तो राष्ट्रों में परस्पर होने वाले युद्धों का हल भी अहिंसा के द्वारा ही बतलाया है। उनका आदर्श है कि धर्मप्रचार के द्वारा ही विश्व भर के प्रत्येक मनुष्य के हृदय में जँचा दो कि वह 'स्व' में ही सन्तुष्ट रहे, 'पर' की ओर आकृष्ट होने का कभी भी प्रयत्न न करे। 'पर' की ओर आकृष्ट होने का अर्थ है दूसरों के सुख-साधनों को देखकर लालायित हो जाना और उन्हें छीनने का दुस्साहस करना।

☐ प्रत्येक मनुष्य अपनी उचित आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही उचित साधनों का सहारा लेकर उचित प्रयत्न करे। आवश्यकता से अधिक किसी भी सुख-सामग्री का संग्रह कर रखना जैन संस्कृति में चोरी है। व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र क्यों लड़ते हैं? इसी अनुचित संग्रह-वृत्ति के कारण। दूसरों के जीवन के सुख-साधनों की उपेक्षा कर मनुष्य कभी भी सुख-शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। अहिंसा के बीज अपरिग्रहवृत्ति में ही ढूँढ़े जा सकते हैं। एक अपेक्षा से कहें तो अहिंसा और अपरिग्रह दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

☐ आवश्यकता से अधिक संगृहीत एवं संगठित शक्ति अवश्य ही संहार-लीला का अभिनय करेगी, अहिंसा को मरणोन्मुखी बनाएगी। अतएव आप आश्चर्य न करें कि पिछले कुछ वर्षों में जो शस्त्रसंन्यास का आन्दोलन चल रहा था, प्रत्येक राष्ट्र को सीमित सामग्री रखने को कहा जा रहा था, वह जैन तीर्थंकरों ने हजारों वर्ष पहले चलाया था। आज जो काम कानून द्वारा, पारस्परिक विधान के द्वारा लिया जाता है, उन दिनों वह उपदेशों द्वारा लिया जाता था। भगवान् महावीर ने बड़े-बड़े राजाओं को जैन-धर्म में दीक्षित किया था और उन्हें नियम दिया था कि वे राष्ट्र-रक्षा के काम में आने वाले शस्त्रों से अधिक संग्रह न करें। साधनों का आधिक्य मनुष्य को उद्दण्ड बना देता है। प्रभुता की लालसा में आकर कहीं न कहीं किसी पर चढ़ दौड़ेगा और मानव-संहार में युद्ध की आग भड़का देगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

☐ परमाणु बम के आविष्कार की सब देशों में होड़ लग रही है। सब ओर अविश्वास और दुर्भाग्य चक्कर काट रहे हैं। अस्तु, आवश्यकता है आज फिर जैन-संस्कृति के, जैन तीर्थंकरों के, भगवान् महावीर के, जैनाचार्यों के 'अहिंसा परमोधर्मः' की। मानव जाति के स्थायी सुखों के स्वप्नों को एक साथ अहिंसा ही पूर्ण कर सकती है।

☐ इस संसार-रूपी गहरे गर्त्त से निकाल कर परमोन्नत सुख-शान्ति के शिखर पर पहुंचाने वाली मशीनरी के समान कार्य करने वाला सच्चा साधन-रूप सिद्ध परमात्मा ही हम सभी मानवों के लिए आदर्श है। यह सिद्ध पद शुद्धात्मा का पद है जहां आत्मा अपने ही निज स्वभाव में सदा मग्न रहती है। आत्मा प्रकाश के समान परम निर्मल है और आत्म-द्रव्य गुणों का अभेद समूह है। वहां पर सर्वगुण पूर्ण रूप से प्रकाशित होते रहते हैं। सिद्ध भगवान् पूर्ण ज्ञानी, परम वीतरागी, अतीन्द्रिय सुख के सागर, अनन्तशक्तिशाली अर्थात् अनन्त वीर्य के धारी हैं।

☐ प्रभु स्वयं अनन्त सुख के धारक हैं। जो उनको ध्येय मानकर उनकी उपासना करते, उनका ध्यान व स्मरण करते हैं, उनको कोई पाप छू नहीं पाता। उनके सब पातक दूर भाग जाते हैं।

☐ संसारी मानव की आत्मा इन्द्रिय के भोगों में फंसकर अनेक भांति के दुःख उठा रही है। इसकी दशा चूहे के समान हो रही है जो निरन्तर प्रातः से सायं तक लगातार अन्न के दानों के संग्रह में ही लगा रहता है। उसे तो रुपया-पैसा कमाने की धुन सवार रहती है। न्याय, अन्याय, कर्तव्य, अकर्तव्य, भक्ष्य, अभक्ष्य, हित, अहित, भलाई, बुराई, नीच, ऊँच, व्यवहार आदि का कोई विचार नहीं रहता। ऐसी स्थिति में आत्मस्वरूप के विचार के लिए तो उसे समय ही नहीं मिलता। तब बताइये आत्म-कल्याण हो तो कैसे हो? वह धन कमाने में सारा जीवन लगा देते हैं और मरते समय जो कुछ कमा कर छोड़ जाते हैं वह उनके साथ नहीं जाता। अतः जो मानव सुखी होना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे अपने इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को धर्म कार्यों में लगाकर सफल करें। धर्म ही आत्मा का रक्षक है, अन्य कोई नहीं।

☐ यह शरीर समय-समय पर निर्बल और सबल, निरोग और सरोग, सुरूप और कुरूप होता रहता है। साथ ही साथ किसी रोगादिक की अधिकता होने पर इसका असमय में वियोग भी हो जाता है, जो यथासमय देखने में आता रहता है। अतः ऐसे नश्वर शरीर को यदि मनुष्य किसी भी प्राणी की रक्षा में, उसकी भलाई में अथवा व्रती पुरुषों की वैय्यावृत्य में, उनकी सेवा-टहल में लगा दे तो उसका शरीर पाना सफल होगा।

☐ मानव जीवन में सुख और दुःख गाड़ी के पहिये के समान सदा घूमते रहते हैं। कभी दुःख आ जाता है, तो कभी सुख भी आ जाता है। यही जीवन का माधुर्य है।

☐ आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पना चाहता है और चाहता है कि मैं ही सर्वराष्ट्रों का एकमात्र अधिपति बन कर रहूं। इसके लिए वह न्याय का गला घोंटता है, नहीं करने योग्य कार्यों को भी किये बिना चैन नहीं लेता। आज जो शस्त्रास्त्रों का निर्माण हुआ है वह इतना भयंकर और प्रलयङ्कर है कि कदाचित् उसमें से किसी एक का भी प्रयोग हो जाय तो दुनिया का बहु भाग नष्ट हो जाय। ऐसे ही प्रलयंकारी शस्त्रास्त्रों के निर्माण में बड़े-बड़े राष्ट्रों की होड़ लग रही है, जो न तो स्वयं ही रहेंगे और न दूसरों को ही सुख-शान्ति से रहने देंगे।

☐ यह जीवात्मा तो उस शुक के समान है, जो पिंजड़े में पड़ी हुई नलिनी को पकड़कर नीचे की ओर लटक रहा है और समझता है कि—हाय! मुझे किसी नलिनी ने पकड़ रखा है। नलिनी जो जड़ है, अचेतन है, नासमझ है, वह तो किसी को पकड़ती-धकड़ती नहीं है। परन्तु यह अज्ञानी मूढ़ शुक ऐसा ही मान बैठा है, और दुःखी होता है। यदि वह चाहे तो अपनी नासमझी छोड़ कर बन्धन-मुक्त हो सकता है, और दुःख की सन्तति से पार पा सकता है।

☐ जैसे बिना सीढ़ियों की सहायता के किसी ऊँचे रथ पर नहीं चढ़ा जा सकता, वैसे ही ध्यान-रूप रथ पर भी बिना व्रत, श्रुत और तपरूप सीढ़ियों की सहायता के नहीं चढ़ा जा सकता।

☐ यह भारत आर्यभूमि है। मानव जन्म पाया है तो आर्यभावना रक्खें, आर्य क्रिया करें, आर्य विचारधारा का क्षेत्र यही है, अन्यत्र नहीं।

☐ तुम अपने सामने एक महान् लक्ष्य रक्खो। अब तक तुम्हारा लक्ष्य रहा है केवल तात्कालिक क्षणिक सुख। तुम अपना लक्ष्य बनाओ अविनाशी स्थायी सुख। इसके लिए तुम्हें अपनी मान्यतायें बदलनी होंगी, अब तक के संस्कार बदलने होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

☐ जो इस आसक्ति और अहंकार को मन से निकाल देते हैं वे ही वास्तव में बड़े हैं। कागज का मूल्य नहीं, किन्तु जब उस पर अंक की छाप और मोहर लग जाती है तो उस कागज के टुकड़े का भी मूल्य हो जाता है। इसी प्रकार इस शरीर का कोई मूल्य नहीं, किन्तु जब अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग परिग्रह के भार को उतार कर मोहर लग जाती है तब यह शरीर भी पूज्य बन जाता है।

☐ मन को स्थिर करने के लिए स्वाध्याय अमोघ शक्ति है। स्वाध्याय संसार-सागर से पार करने को नौका के समान है, कषाय अटवी को दग्ध करने के लिए दावानल है, स्वानुभव-समुद्र की वृद्धि के लिए चन्द्रमा के समान है, भव्य कमल विकसित करने के लिए भानु है, और पाप रूपी उल्लू को छिपाने के लिए प्रचण्ड मार्तण्ड है।

☐ स्वाध्याय ही परम तप है, कषाय निग्रह का मूल कारण है, ध्यान का मुख्य अंग है, शुद्ध ध्यान का हेतु है, भेद ज्ञान के लिए रामबाण है, विषयों में अरुचि कराने के लिए ज्वर सदृश है, आत्मगुणों का संग्रह कराने के लिए राजा तुल्य है।

☐ सत्समागम से भी विशेष हितकर स्वाध्याय है। सत्समागम आस्रव का कारण है, जबकि स्वाध्याय स्वात्माभिमुख होने का प्रथम उपाय है। सत्समागम में प्रकृतिविरुद्ध मनुष्य मिल जाते हैं, परन्तु स्वाध्याय में इसकी भी सम्भावना नहीं। अतः स्वाध्याय की समानता रखने वाले अन्य कोई कार्य नहीं। अतः स्वाध्याय की अवहेलना करने से हम दैन्य वृत्ति के पात्र और तिरस्कार के भाजन हो जाते हैं। कल्याण मार्ग में स्वाध्याय प्रधान सहकारी कारण है। स्वाध्याय से उत्कृष्ट कोई तप नहीं।

☐ स्वाध्याय आत्मशान्ति के लिए है, केवल ज्ञानार्जन के लिए नहीं। ज्ञानार्जन के लिए तो विद्याध्ययन है। स्वाध्याय तप है। इससे संवर और निर्जरा होती है। स्वाध्याय का फल निर्जरा है, क्योंकि यह अन्तरंग तप है। जिनका उपयोग स्वाध्याय में लगता है वे नियम से सम्यग्दृष्टि हैं।

☐ कामवासना को मजबूरी में दबाया जाय। लोकलाज या भय के कारण दबाया जाय तो उससे मन में उद्वेलना होती है। किन्तु यदि उसे विवेक और समझ के साथ दबाया जाय, स्वेच्छा से काम-विजय की जाय तो उससे मन में बड़ा सन्तोष और तृप्ति रहती है। स्वेच्छा से काम का त्याग या विवेक से काम पर विजय यही आचार्यों का उपदेश है।

☐ मन में वासना न जगे, वही पूर्ण ब्रह्मचर्य है। तन का विकार मन के विकार पर निर्भर करता है। मन में शुद्धि हो तो तन निर्विकार रहेगा। जो लोकलाज या भय से शरीर को निर्विकार दिखाते हैं, किन्तु मन में जो विकार पालते-पोसते रहते हैं, वे मायाचार करते हैं। ब्रह्मचर्य लोक-प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। उसे तुम अपने आत्मा का रूप मान कर पालो। मन में विकार मत आने दो। विकार आयें तो वस्तुस्वरूप का विचार करके मन को निर्विकार बनाने का प्रयत्न करो।

☐ मन की गति दुनिया में सबसे तेज है। शब्द की गति बहुत तेज मानी जाती है। शब्द की गति से भी तेज चलने वाले विमान भी अब बन गये हैं। किन्तु मन की गति को कोई विमान नहीं पा सकता। मन अभी यहां है, अगले क्षण में हजारों मील दूर है। मन उड़ान भरकर कभी स्वर्ग में पहुंच जाता है और कभी दूसरी जगह। मन की इस उड़ान के कारण इस जीव की आशा-तृष्णा का कोई ओर-छोर नहीं है, कोई अन्त नहीं।

☐ कोई भी मनुष्य समाज से सर्वथा पृथक् रहकर अपना अस्तित्व क़ायम नहीं रख सकता। समाज में घुल-मिल कर ही वह अपने जीवन का आनन्द उठा सकता है। जब यह निश्चित है कि व्यक्ति समाज से अलग नहीं रह सकता, तब यह आवश्यक है कि वह अपने हृदय को उदार बनाए, विशाल बनाए और जिन लोगों से खुद को काम लेना है या जिनको देना है, उनके हृदय में अपनी ओर से पूर्ण विश्वास पैदा करे। जब तक मनुष्य समाज में अपनेपन का भाव न पैदा करेगा अर्थात् दूसरे उसको अपना आदमी नहीं समझेंगे और वह भी दूसरों को अपना आदमी न समझेगा तब तक समाज का कल्याण नहीं हो सकता।

☐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org